IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का प्रमाण विमर्श

रविदास किस्कु,
शोधच्छात्र, SSIS, JNU.

सारांश

उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का सिद्धांत भारतीय दर्शन के अद्वैत सिद्धांत का मूल आधार है, जहाँ ब्रह्म को न केवल सृष्टि का कारण माना गया है, बल्कि उसकी प्रत्येक कण में व्याप्ति को भी प्रमाणित किया गया है। इस शोधपत्र में निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। 1. ब्रह्म की अवधारणा का दार्शनिक और आध्यात्मिक विश्लेषण। 2. ब्रह्म और सृष्टि के पारस्परिक संबंध की व्याख्या। 3. उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वव्यापकता के प्रमाण और उनका औचित्य। 4. ब्रह्मज्ञान द्वारा व्यक्ति की आत्मबोध की प्रक्रिया और मुक्ति की अवधारणा।

कूट शब्द – 1.उपनिषद्, 2.आत्मा, 3.ब्रह्म, 4.ज्ञान, 5.पुरुष, 6.विद्या, 7.अमृत्वादि।

उपनिषदों में ब्रह्म की सर्वव्यापकता

ईशोपनिषद् का प्रथम मंत्र ही ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति की ओर संकेत करता है **"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।"**[1] इसका अर्थ है कि इस जगत में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर (ब्रह्म) से आच्छादित है। यह मंत्र ब्रह्म की सर्वव्यापकता का सबसे सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। यहाँ बताया गया है कि संपूर्ण सृष्टि में ब्रह्म व्याप्त है और हर वस्तु उसकी सत्ता से संचालित होती है। कठोपनिषद् में भी ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का वर्णन मिलता है। इसमें यम नचिकेता से कहते हैं: **"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।"**[2] इसका अर्थ है, वह एक ही है, जो सभी प्राणियों में उपस्थित है और विविध रूपों में प्रकट होता है। इस प्रकार, यहाँ ब्रह्म को अद्वितीय और सर्वव्यापी बताया गया है, जो अनेकता में एकत्व की अभिव्यक्ति करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को **"सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म"**[3] कहा गया है, जिसका अर्थ है कि ब्रह्म अनंत, ज्ञानस्वरूप और सत्य है। इसमें सृष्टि के विविधतापूर्ण रूपों को ब्रह्म से उत्पन्न होने और अंततः उसी में लय हो जाने की प्रक्रिया का वर्णन है। **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"**[4] अर्थात् यह सब वास्तव में ब्रह्म है। यह स्पष्ट करता है कि संपूर्ण सृष्टि ब्रह्म स्वरूप है। **"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"॥**[5] अर्थात् एक ही देवता सभी प्रणियों में छिपा हुआ है, वह सर्वव्यापक है और सभी जीवों का आन्तरिक आत्मा है, कर्मोंका अधिष्टाता, `समस्त प्राणियोंमें बसा हुआ, सबका साक्षी, सबको चेतनत्व प्रदान करनेवाला, शुद्ध और निर्गुण है। **"यो दिवि तिष्ठन् दिवोऽन्तरो यं द्यौर्न वेद यस्य द्यौः शरीरं यो दिवमन्तरो यमयत्येष तो आत्मान्तर्याम्यमृतः॥"**[6] इस मंत्र में अंतर्यामी ब्रह्म का वर्णन किया गया है। यह परमात्मा हर वस्तु के भीतर निवास करता है और सभी को नियंत्रित करता है, फिर भी उससे अलग और अज्ञेय है। यहाँ आकाश का उदाहरण देकर बताया गया है कि परमात्मा आकाश के भीतर रहकर भी उससे भिन्न है और उसे संपूर्ण रूप से संचालित करता है। यह आत्मा सबके भीतर अमृत स्वरूप में मौजूद है। **"यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरः"।**[7] अर्थ: वह जो पृथ्वी में स्थित है और पृथ्वी से परे भी है। यहाँ पृथ्वी में ब्रह्म की उपस्थिति बताई गई है। **"स एष नेति नेत्यात्मा।"**[8] अर्थ: "नेति नेति" कहकर यह समझाया गया है कि आत्मा किसी भी स्थूल या सूक्ष्म, दृश्य या अदृश्य वस्तु के साथ पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं होती। आत्मा न तो किसी गुण से बंधी है, न किसी नाम, रूप, या सीमा से। इसका स्वरूप इतना व्यापक और सूक्ष्म है कि उसे शब्दों में सीमित नहीं किया जा सकता। इसलिए यह

कहा जाता है कि आत्मा यह नहीं यह नहीं है यानी किसी भी विशेषता से परे है। **"यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।"**[9] यह श्लोक रुद्र को ब्रह्मांड का सर्वोच्च स्वामी और सभी देवताओं का स्रोत मानता है। रुद्र, जो एक ही समय में सृजन, पालन और संहार की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, सभी देवताओं का उत्पत्ति स्थान हैं। यहां उन्हें "विश्वाधिप" यानी विश्व का अधिपति कहा गया है, जो बताता है कि वे संपूर्ण सृष्टि पर नियंत्रण रखने वाले परमात्मा हैं। महर्षि शब्द से संकेत मिलता है कि रुद्र में महान ज्ञान और दिव्यता है। **"एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।"**[10] इस श्लोक में "रुद्र" शब्द का अर्थ यहाँ परमात्मा या ब्रह्म से है। इस श्लोक में यह कहा गया है कि ब्रह्मांड में केवल एक ही परम सत्ता है, जो एकमात्र है और जिसका कोई दूसरा नहीं है। यह एकत्व का सिद्धांत बताता है कि परमात्मा अद्वितीय, अखंड और अपरिवर्तनीय है। इस अद्वितीयता में कोई अन्य शक्ति या देवता उसके समान नहीं है। वह एक ही है, जो सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, और सर्वज्ञ है। **"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥"**[11] इस श्लोक में परमात्मा के सृजन और ज्ञान प्रदान करने वाले स्वरूप का वर्णन किया गया है। यहाँ परमात्मा को वह शक्ति कहा गया है जिसने ब्रह्मा को सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न किया और उन्हें वेदों का ज्ञान दिया, ताकि सृष्टि का मार्गदर्शन हो सके । यह परमात्मा आत्मा का प्रकाश है, जो ज्ञान का स्रोत है और मुक्ति की इच्छा रखने वालों का अंतिम आश्रय है। भक्त उस परमात्मा की शरण में जाता है ताकि वह अपने अंतर्मन में उस परम ज्ञान का अनुभव कर सके और मोक्ष प्राप्त कर सके। **“न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति”॥**[12] वहाँ न सूर्य चमकता है, न चंद्रमा और तारे, न ही ये विद्युत चमकती है, तो फिर यह अग्नि कैसे चमकेगी? केवल उसी परमात्मा के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है। यह श्लोक उस परमात्मा के सर्वव्यापी और अद्वितीय प्रकाश की ओर इंगित करता है, जो स्वयं प्रकाशित होकर सारे संसार को प्रकाशित करता है। यह उपनिषदों में ब्रह्म या परम तत्व के बारे में बताया गया है कि वह स्वयं प्रकृति के सभी स्रोतों से परे है और इन सभी का वास्तविक स्रोत है। **“एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संन्निविष्टः। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय”॥**[13] यह एकमात्र हंस इस पुरे संसारके मध्य में स्थित है। वही अग्नि के रूपमे जल में भी निवास करता है। उसी को जानने से ही मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है, अन्य कोइ मार्ग नही है मुक्ति पाने का। इस श्लोक में हंस शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिये किया गया है। जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड मे व्याप्त है और विभिन्न तत्वों में निवास करता है। यहाँ पर यह बताया गया है कि मौक्ष या मृत्यु से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय है उस परमात्मा का साक्षात्कार कारना या उसे जानना। **“तत्त्वमसि”**[14] यह इंगित करता है कि जीव और ब्रह्म मूल रूप से एक ही हैं। "तत्त्व" ब्रह्म का सूचक है, जो सृष्टि का स्रोत और आधार है, जबकि "त्वम्" (तू) जीव का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनों की अभिन्नता यह दर्शाती है कि ब्रह्म प्रत्येक जीव में व्याप्त है। **“ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् दावात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः”।**[15] इस श्लोक में बताया गया है कि ध्यानयोग का अभ्यास करने वाले महान ऋषियों ने अपनी आंतरिक दृष्टि से उस ब्रह्म की शक्ति को देखा है, जो स्वयं अपने गुणों में गुप्त रूप से छिपा हुआ है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म की शक्ति सभी गुणों और तत्वों में व्याप्त है, लेकिन वह स्वयं अदृश्य और अप्रकट रूप में रहती है। वही एक ब्रह्म समस्त कारणों को नियंत्रित करता है, और वे सभी कारण काल में जुड़े हुए हैं। यह ब्रह्म ही सभी कारणों और तत्वों का आधार है, और सब पर एकमात्र रूप से अधिष्ठित है। **“मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्”॥** [16]अर्थात् माया को प्रकृति मानना चाहिए और महेश्वर को उस माया का अधिपति मानना चाहिए। इसि महेश्वर के अंसरूप तत्वों के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। समस्त सृष्टि माया और प्रकृति से उत्पन्न हुई है, जो परमात्मा की शक्ति है। यह माया सभी जगह व्याप्त है और उसी से यह संपूर्ण सृष्टि अस्तित्व में है। महेश्वर जो मायाका अधिपति है, उसके अंशरूप तत्त्व पूरे जगत् मे विद्यमान है। इसका अर्थ है की ब्रह्म की उपस्तिथि इस सृष्टि के प्रत्येक अंश मे है, चाहे वह जर हो या चेतन। **“एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्। भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्”॥**[17] अर्थात् जिसे जानना चाहिए वह सदा आत्मा में स्थित है, और इसके अतिरिक्त जानने योग्य कुछ भी नहीं है। इस त्रिविध ब्रह्म को भोक्ता,भोग्य, और प्रेरिता, के रूप में समझना चाहिए। ब्रह्म हर जीव में भोक्ता के रूप में विद्यमान है। सभी जीवों में जो चेतना और अनुभूति की शक्ति है, वह ब्रह्म के कारण ही संभव है। इस प्रकार ब्रह्म प्रत्येक जीव में निवास करता है और अनुभव का स्रोत बनता है। जगत के समस्त पदार्थ, जिनका अनुभव किया जाता है, वे भी ब्रह्म के ही स्वरूप हैं। भोग्य पदार्थ, अर्थात् सभी वस्तुएं, रूप, रस, गंध आदि सभी ब्रह्म के अंश हैं। ब्रह्म संसार के सभी अनुभवों और कर्मों को प्रेरित करता है। हर कार्य और गतिविधि ब्रह्म द्वारा प्रेरित होती है। इस प्रकार, ब्रह्म सबका आधार बनकर सभी के भीतर निवास करता है और संसार को नियंत्रित करता है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि ब्रह्म भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता के रूप में संपूर्ण जगत में व्याप्त है। इसका मतलब यह है कि सभी अनुभव, सभी वस्तुएं, और सभी क्रियाएं ब्रह्म के कारण

संभव हैं। इस त्रिविध रूप से ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का प्रमाण मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म ही इस संसार का आधार और प्रत्येक अंश में विद्यमान है। **"तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-रापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः। एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति"॥**[18] जैसे तिलों में तेल है, दही में घी है, पानी में स्रोतों का प्रवाह है, और लकड़ी में अग्नि है - उसी प्रकार आत्मा में ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसे सत्य और तपस्या के द्वारा जो अनुभव करता है, वही इसे देख पाता है। इस श्लोक में यह समझाया गया है कि ब्रह्म की उपस्थिति सभी जीवों और वस्तुओं में छिपी हुई है, जैसे तिल में तेल, दही में घी, नदियों में जल, और लकड़ी में अग्नि। इन उदाहरणों के माध्यम से श्लोक यह सिद्ध करता है कि ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन उसे अनुभव करने के लिए सत्य और तपस्या की आवश्यकता होती है। **"एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः॥ स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्टति सर्वतोमुखः"॥** [19]अर्थात् यह वही देव(ब्रह्म) है, जो सभी दिशाओं में व्याप्त है। वह सवसे पहले उत्पन्न हुआ है, वही गर्भ के भीतर विद्यमान है। वही जन्मा है,और वही जन्म लेने वाला है। वह सभी जीवों में भीतर स्थित् है और सर्वव्यापी रूप में विद्यमान् है। इस श्लोक में यह प्रमाणित किया गया है कि ब्रह्म न केवल समय और स्थान से परे है, बल्कि हर जीव और हर वस्तुमें भीतर से विद्यमान है। ब्रह्म का यह सर्वव्यापक स्वरूप तर्शाता है कि वह संसार के प्रत्येक अंश में समाहित है और सबको अपनी शक्ति से संचालित कर रहा है। **"यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश। य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः"॥**[20] इस श्लोक में ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का प्रमाण विभिन्न तत्त्वों में उनकी उपस्थिति के रूप में दिया गया है। इसमें कहा गया है कि वह देव अर्थात् ब्रह्म अग्नि में है, जल में है, सम्पूर्ण विश्व में और सभी जीवों में भी वही व्याप्त है। इसी तरह, वह औषधियों और वनस्पतियों में भी उपस्थित् है। अर्थात् इस श्लोक में अग्नि,जल,पृथ्वी,औषधि,वनस्पति आदि प्रकृतिक तत्त्वों में ब्रह्म की उपस्थिति बाताई गई है। यह इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्म हर जगह व्याप्त हैं। **"सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः"॥**[21] इस श्लोक में ब्रह्म की सर्वव्यापकता का प्रमाण दिया गया है। इसमे कहा गया है कि शिव अर्थात् ब्रह्म सर्वानन, यानि सभी का मुख, सिर और ग्रीवा है, वे सभी प्रणियों के हृदय में वास करते हैं और सर्वव्यापी हैं। इसलिए उन्हें सर्वगत अर्थात् हर जगह विद्यमान कहा गया है। **"अहम् ब्रह्मास्मि"**[22] यह उद्‌घोष करता है कि प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है। यदि आत्मा और ब्रह्म एक हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म हर जीव और वस्तु में व्याप्त है। **"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्"॥**[23] इस श्लोक में कहा गया है कि ब्रह्म के अनगिनत सिर हैं, जो हर स्थान पर उनकी उपस्थिति को दर्शाते हैं। उनके अनगिनत नेत्र हैं, जो ब्रह्म की सर्वत्र दृष्टि का प्रतीक हैं। उनके अनगिनत पाँव हैं, जो उनके हर स्थान पर चलने का प्रतीक हैं। ब्रह्म ने पूरे विश्व को हर दिशा से घेर रखा है। वे सीमाओं से परे और अनन्त रूप मे विस्तारित हैं। **"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति"।** [24] अर्थात् "यद्भूतं यच्च भव्यम्" से स्पष्ट होता है कि ब्रह्म भूत, वर्तमान और भविष्य सभी कालों में व्याप्त है। "अमृतत्वस्येशानो" से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म अजर-अमर और अविनाशी है, जो उसके अनंत स्वरूप का प्रमाण है। "पुरुष एवेदं सर्वं" यह इंगित करता है कि ब्रह्म प्रत्येक वस्तु और प्राणी में विद्यमान है, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो। "यदन्नेनातिरोहति" इस तथ्य को दर्शाता है कि ब्रह्म स्थूल पदार्थों जैसे अन्न से भी परे है और सूक्ष्मतम रूप में सर्वत्र विद्यमान है। **"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृण्यत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तेस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्"।**[25] इस श्लोक का अर्थ है 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता' अर्थात् हाथ-पैर रहित होकर भी गति और ग्रहणशीलता हैं, यह दर्शाता है कि ब्रह्म भौतिक शरीर के बिना भी सब कुछ कर सकता है, जो उसकी सर्वव्यापकता का प्रतीक है।' पश्यत्यचक्षुः' अर्थात् आँखें न होते हुए भी देखता है यह इंगित करता है कि ब्रह्म की दृष्टि सर्वव्यापी और सर्वदर्शी है, उसे भौतिक आँखों की आवश्यकता नहीं है। 'शृण्यत्यकर्णः' अर्थात् ब्रह्म की श्रवण शक्ति बिना भौतिक कानों के भी संपूर्ण है, जो उसकी असीम और सर्वत्र उपस्थित शक्ति को दर्शाता है। 'स वेत्ति वेद्यं न च तेस्यास्ति वेत्ता' अर्थात् यह ब्रह्म के सर्वज्ञ और अप्राप्य स्वरूप को दर्शाता है। ब्रह्म सब कुछ जानता है, लेकिन उसकी व्यापकता को समझना किसी के लिए भी संभव नहीं है। **'तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्'** अर्थात् यह ब्रह्म के श्रेष्ठ और सर्वोच्च स्वरूप का संकेत करता है, जो हर जगह और हर काल में उपस्थित है। **"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः"।**[26] इस श्लोक का अर्थ है वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है। वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, वही जल है, वही प्रजापति है। इस श्लोक से स्पष्ट है कि ब्रह्म हर स्थान, हर तत्व, और हर रूप में विद्यमान है। यह ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति और उसकी अनंत शक्तियों का प्रमाण है। इस श्लोक में ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का प्रमाण विभिन्न प्राकृतिक और सार्वभौमिक तत्वों के माध्यम से दिया गया है। **"नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः। अनादिमत्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो यातानि भुवनानि विश्वा"॥**[27] अर्थात् 'नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः' यहाँ ब्रह्म को नील तथा आकाश, पतंग तथा सूर्य, हरित तथा पृथ्वी या वनस्पति, लोहिताक्ष तथा अग्नि, तडित्गर्भ तथा बादल, ऋतवः और

समुद्र के रूप में व्यक्त किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म इन सभी में समाहित है। ये तत्व न केवल प्रकृति के प्रमुख घटक हैं, बल्कि वे ब्रह्म की उपस्थिति और सर्वव्यापकता का प्रतीक भी हैं। 'अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे' अर्थात् ब्रह्म को अनादि और विभु कहा गया है । यह दर्शाता है कि ब्रह्म न केवल हर तत्व में है, बल्कि यह तत्वों का मूल भी है और अनंत है। 'यतो जातानि भुवनानि विश्वा:' अर्थात् इस वाक्य के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि सभी भुवन अर्थात् संपूर्ण विश्व या ब्रह्मांड ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं । इस प्रकार, यह प्रमाणित करता है कि ब्रह्म हर वस्तु और हर स्थान में विद्यमान है। "**अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम्। सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन**"॥[28] 'अजम्' अर्थात् ब्रह्म को अजन्मा कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वह किसी भी भौतिक प्रक्रिया या समय की सीमा में नहीं आता । यह बताता है कि ब्रह्म अनादि और सर्वव्यापी है, क्योंकि वह जन्म और मृत्यु के चक्र से परे है। 'अनिद्रमस्वप्नम्' अर्थात् ब्रह्म को न सोने वाला और न ही स्वप्न देखने वाला कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म चेतना का शुद्ध स्वरूप है, जो हमेशा जागृत और सतत है। यह सर्वत्र और निरंतर विद्यमान होने का प्रमाण है। 'अनामकमरूपकम्' अर्थात् ब्रह्म का कोई नाम या रूप नहीं है। वह सभी सीमाओं और भौतिक गुणों से परे है। यह दिखाता है कि ब्रह्म किसी विशेष स्थान, समय, या वस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि वह असीमित और सर्वत्र है। सकृद्विभातम् अर्थात् ब्रह्म केवल एक बार ही प्रकाशित होता है, जो समय और स्थान से परे होकर हर समय विद्यमान रहता है। यह उसके सर्वव्यापी होने का प्रमाण है। 'सर्वज्ञम्' अर्थात् ब्रह्म को सर्वज्ञ कहा गया है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म संपूर्ण सृष्टि और उसकी प्रत्येक वस्तु के बारे में जानता है। यह सर्वव्याप्ति की ओर संकेत करता है, क्योंकि संपूर्ण ज्ञान का आधार केवल वही हो सकता है जो सर्वत्र उपस्थित हो। 'नोपचारः कथञ्चन' अर्थात् यह बताता है कि ब्रह्म किसी भी प्रकार के क्रियाओं, या व्यवहार के अधीन नहीं है। इसका स्वरूप स्वयंस्थित और स्वतंत्र है, जो उसकी सार्वभौमिकता का प्रमाण है। "**सर्वाभिलापविगतः सर्वचिन्तासमुत्थितः। सुप्रशान्तः सकृज्ज्योतिः समाधिरचलोऽभयः**"॥[29] अर्थात् 'सर्वाभिलापविगतः' इसका अर्थ है सभी प्रकार की वाणी या वर्णन से परे। यह ब्रह्म की असीम और अवर्णनीय प्रकृति को दर्शाता है। जो चीज वर्णन से परे है, वह सर्वत्र व्याप्त हो सकती है, क्योंकि उसका किसी एक स्थान, समय, या रूप में सीमित होना संभव नहीं। 'सर्वचिन्तासमुत्थितः' इसका अर्थ है सभी प्रकार की चिंताओं से परे। ब्रह्म की यह विशेषता उसकी अपरिमितता और निरपेक्षता को दर्शाती है, जिससे वह हर स्थिति और हर स्थान में स्थित है। 'सुप्रशान्तः' इसका अर्थ है पूर्णतः शांत। यह दर्शाता है कि ब्रह्म किसी भी हलचल, अशांति या सीमाओं से प्रभावित नहीं होता। यह शाश्वत सत्य है जो हर जगह समान रूप से विद्यमान है। 'सकृज्ज्योतिः' स्वयं प्रकाश या स्वतः प्रकाशमान। ब्रह्म स्वयं ज्योतिर्मय है, और चूँकि प्रकाश स्वयं हर जगह व्याप्त होता है, ब्रह्म की व्याप्ति भी सर्वत्र मानी जाती है। 'समाधिरचलोऽभयः' समाधि रूप, अचल और अभय। ब्रह्म स्थिर और निर्भय है, जो हर जगह समान रूप से स्थिरता और शांति प्रदान करता है। "**यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते**"॥[30] अर्थात् वह ब्रह्म वाणी व्यक्त नहीं कर सकती और जिसके कारण वाणी व्यक्त होती है, उसे ही ब्रह्म जानो। वह ब्रह्म नहीं है जो पूजा अर्चना में विचार करते हैं। इस श्लोक में ब्रह्म को वाणी, इंद्रियों और मन से परे तथा सर्वव्यापी शक्ति के रूप में स्थापित् किया गया है। वाणी और इंद्रियों की क्रियाशीलता का आधार स्वयं ब्रह्म है। इसका सर्वत्र व्याप्त होना इस बात से प्रमाणित होता है कि यह किसी एक स्थान, रूप, या समय तक सीमित नहीं है, बल्कि अनंत रूप से सभी में निहित है।"**भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति**"॥[31] अर्थात् इसमें बतलाते हैं की आत्मज्ञानसे होगा क्या सो बताता हैं भूत-भूतमें अर्थात् सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें आत्माका शोधनकर उसे उनसे अलग निकालकर यानी संसार धर्मोंसे अस्पृष्ट एकमात्र आत्मतत्त्वको आत्मभावसे उपलब्ध कर धीर बुद्धिमान अर्थात् विवेकी पुरुष जिनकी बाह्य विषयोंकी अभीलाषा निवृत्त हो गयी है मरकर अर्थात् इस शरीरादि अनात्मस्वरूप लोकसे जिनका ममत्व और अहंकार निवृत्त हो गया है, ऐसे होकर अमृत,अमरण,अमर अर्थात् ब्रह्म ही हो जाते हैं, जैसा कि जो पुरुष निश्चयपूर्वक उस परमब्रह्मको जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है इस श्रतिसे सिद्ध होता है। "**एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्**"॥[32] अर्थात् यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही पर है, इस अक्षरको ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, वही उसका हो जाता है। "**एतदालम्बन श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते**"॥ अर्थात् यहाँ 'एतदालम्बन' का तात्पर्य है, संपूर्ण सृष्टि का आधार ब्रह्म है। सृष्टि में जो कुछ भी प्रकट होता है, वह ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है और उसी में स्थित है। यह ब्रह्म व्यापक है और हर चीज में विद्यमान है। ब्रह्म को श्रेष्ठ और परम आधार कहा गया है क्योंकि वह न केवल सृष्टि का मूल कारण है, बल्कि उसमें सभी भूत, वर्तमान और भविष्य के तत्व समाहित हैं। इसका अर्थ है, ब्रह्म सभी काल, स्थान और वस्तुओं में व्याप्त है। जब साधक इस ब्रह्म को अपनी आत्मा के माध्यम से पहचानता है, तो उसे समझ में आता है कि ब्रह्म न केवल उसके भीतर है, बल्कि वह सभी जीवों और वस्तुओं में व्याप्त है। इस ज्ञान के द्वारा वह ब्रह्मलोक अर्थात् मुक्ति या परम सत्य को प्राप्त करता है।

निष्कर्ष

उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का विमर्श करते हुए यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म अद्वितीय, शाश्वत, और सर्वव्यापी तत्व है, जो संपूर्ण सृष्टि का आधार है। उपनिषदों के सूत्र, जैसे **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"**, **"अहम् ब्रह्मास्मि"**, तथा **"तत्त्वमसि"**, ब्रह्म की सार्वभौमिकता और उसकी सृष्टि के साथ अभिन्नता को प्रमाणित करते हैं। इस अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं: -

1. **ब्रह्म की सार्वभौमिकता**: ब्रह्म सृष्टि का आधारभूत तत्व है, जो प्रत्येक कण और प्राणी में निहित है। यह न केवल सृष्टि का सृजनकर्ता है, बल्कि स्वयं सृष्टि में समाहित है।

2. **आध्यात्मिक जागरूकता का साधन**: ब्रह्म के ज्ञान से व्यक्ति आत्मबोध प्राप्त करता है, जिससे उसे संसार के बंधनों से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

3. **वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण**: उपनिषदों में ब्रह्म की व्याप्ति केवल आध्यात्मिक सत्य नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक सिद्धांत है, जो जीवन, प्रकृति, और ब्रह्मांड के हर पहलू को एकीकृत करता है। अर्थात् उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति यह दर्शाती है कि ब्रह्म सृष्टि का अभिन्न अंग होने के साथ-साथ उसकी परम चेतना है। यह दर्शन न केवल भारतीय चिंतन परंपरा का सार है, बल्कि मानवता के समग्र विकास और मोक्ष का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ सूची

[1] ईशावास्योपनिषद्, १.१
[2] कठोपनिषद्, २.२.१२.
[3] तैत्तिरीयोपनिषद् २.१.१
[4] छान्दोग्योपनिषद् ३.१४.१
[5] श्वेताश्वतरतरोपनिषद् ६.११
[6] वृहदारण्यकोपनिषद् ३.७.८
[7] वृहदारण्यकोपनिषद् ३.७.३
[8] वृहदारण्यकोपनिषद् ३.९.२६
[9] श्वेताश्वतरोपनिषद ४.१२
[10] श्वेताश्वतरोपनिषद ३.२
[11] श्वेताश्वतरोपनिषद ६.१८
[12] श्वेताश्वतरोपनिषद ६.१४
[13] श्वेताश्वतरोपनिषद ६.१५
[14] छान्दोग्योपनिषद् ६.८.७
[15] श्वेताश्वतरोपनिषद १.३
[16] श्वेताश्वतरोपनिषद ४.१०
[17] श्वेताश्वतरोपनिषद १.१२
[18] श्वेताश्वतरोपनिषद १.१५
[19] श्वेताश्वतरोपनिषद २.१६
[20] श्वेताश्वतरोपनिषद २.१७
[21] श्वेताश्वतरोपनिषद ३.११
[22] वृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१०
[23] श्वेताश्वतरोपनिषद ३.१४
[24] श्वेताश्वतरोपनिषद ३.१५
[25] श्वेताश्वतरोपनिषद ३.१९
[26] श्वेताश्वतरोपनिषद ४.२
[27] श्वेताश्वतरोपनिषद ४.४
[28] माण्डूक्योपनिषद अ0प्र0.३६
[29] माण्डूक्योपनिषद् अ0प्र0.३७
[30] केनोपनिषद् खण्ड १.४

[31] केनोपनिषद् खण्ड २.५
[32] कठोपनिषद् १.२.१६

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, वाचस्पति (सम्पा.). (तिथि अनुपलब्ध). ईशावास्योपनिषद्. साहित्य भण्डार, मेरठ।

2. शास्त्री, शिवनारायण (सम्पा.). (2007). ईशोपनिषद् भाष्यसंग्रह. परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

3. गोयन्दका, हरिकृष्णदास (व्याख्याकार). (1958). ईशादि नव उपनिषद्. गीता प्रेस, गोरखपुर।

4. तारणिशा (अनु.). (तिथि अनुपलब्ध). ईशोपनिषद्. रामनारायणलाल एण्ड कम्पनी, इलाहाबाद।

5. गीता प्रेस. (तिथि अनुपलब्ध). कठोपनिषद् (हिन्दी अनुवाद). गोरखपुर।

6. आध्याप्रसाद. (2008). कठोपनिषद् (हिन्दी व्याख्या). अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।

7. वीरेन्द्र कुमार. (1974). कठोपनिषद् शाङ्करभाष्य (हिन्दी व्याख्या). जमुना पाठक, वाराणसी।

8. वैजनाथ (सम्पा.). (1977). केनोपनिषद्. आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, ख्रिस्ताब्दी।

9. (अनुवादक अनुपलब्ध). (तिथि अनुपलब्ध). केनोपनिषद् शाङ्करभाष्य (हिन्दी अनुवाद). रामकृष्ण मठ, नागपुर।

10. (व्याख्याकार अनुपलब्ध). (1955). छान्दोग्योपनिषद् (नित्यानन्दकृत मीमांसा व्याख्या). आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, खिस्ताब्दी।

11. गीता प्रेस. (तिथि अनुपलब्ध). छान्दोग्योपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित). गोरखपुर।

12. काशीनाथ शास्त्री (सम्पा.). (1958). बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्य. आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, खिस्ताब्दी।

13. गीता प्रेस. (तिथि अनुपलब्ध). बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्य. गोरखपुर।

14. गीता प्रेस. (तिथि अनुपलब्ध). बृहदारण्यकोपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित). गोरखपुर।

अन्तर्जाल

1. https://hi.wikipedia.org/wiki.
2. https://www.google.com.
3. https://www.google.com/url?sa.
4. https://www.google.com/url?sa=t&source